International Journal of Humanities and Social Science Research
ISSN: 2455-2070; Impact Factor: RJIF 5.22
www.socialsciencejournal.in
Volume 3; Issue 2; February 2017; Page No. 107-110

प्राचीन भारतीय धर्मग्रंथों में पर्यावरण चेतनाः एक ऐतिहासिक अध्ययन

[1] विजय कुमार पाल, [2] डॉ0 एम0 एस0 गुँसाई

[1] शोधार्थी, एस.जी.आर.आर (पी.जी.) कॉलेज देहारादून, उत्तराखण्ड, भारत।
[2] असिस्टेंट प्रोफेसर, एस.जी.आर.आर (पी.जी.) कॉलेज देहारादून, उत्तराखण्ड, भारत।

सारांश
इतिहास निरन्तर चलने वाली वह अनवरत प्रक्रिया है जिसमें वर्तमान में घटित समस्त घटनाएं भूतकाल में पहुचते ही इतिहास की विषयवस्तु बन जाती है। इतिहास देश और काल की सीमा में आबद्ध होता है तथा देश एवं काल का एक प्राकृतिक परिवेश होता है। प्रकृति एवं पर्यावरण के दायरे में सिमट कर ही घटनाएँ निरन्तर इतिहास की विषयवस्तु बनती रहती है। अतः यह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है, जो प्रकृति एवं पर्यावरण से इतर नहीं होती है। विकास–ह्रास, उन्नत–अवनत, उत्थान–पतन, प्रकृति के शाश्वत् नियम हैं जिसमें निहित तथ्य ही इतिहास के निर्माण में सहायक होती है। पृथ्वी कर जीवन की उत्पत्ति एक महत्वपूर्ण घटना है। प्रकृति एवं पर्यावरण ही इसका मुख्य उत्तरदायी कारक है। मानव समस्त प्राणियों में सर्वाधिक बुद्धिजीवी के रूप में स्वीकार किया गया है। बुद्धिमता से उसने अपनी भूतकालीन घटित घटनाओं को पिरोने के लिए इतिहास रूपी वृक्ष को रोपण करने हेतु उत्प्रेरित किया है किन्तु कालान्तर में इसी बुद्धिमता ने पर्यावरण सम्बन्धी तत्वों के अतिशय दोहन एवं विदोहन से उसे क्षत्–विक्षत् कर दिया जिसका परिणाम वर्तमान समय में पर्यावरणीय समस्याओं के रूप में परिलक्षित होता है। वर्तमान युग में बढ़ती जनसंख्या, औद्योगिकीकरण, वनों की कटाई, वन्य जीवों का संहार तथा परमाणु परीक्षणों से पर्यावरण संतुलन बिगड़ रहा है। इस प्रदूषण प्रसार के लिए मानवजनित कर्म ही उत्तरदायी है। पर्यावरण की शुद्धि न केवल सभ्यता एवं संस्कृति की प्रतीक होती है, अपितु हमारे शारीरिक, मानसिक आदि सभी के विकास हेतु भी आवश्यक होती है। प्राचीन काल में प्रदूषण की समस्या वर्तमान की भांति विकराल नहीं थी। फिर भी पर्यावरण के सन्दर्भ में ऋषियों मनीषियों का चिंतन व्यवहारिक एवं वैज्ञानिक था, और महत्वपूर्ण था।

मूल शब्दः ऋग्वेद, यजुर्ववेद, अथर्ववेद, उपनिषद, स्मृतियाँ, महाभारत, रामायण, श्रीमद्भगवत्गीता।

प्रस्तावना
प्रकृति से मानव समाज का सम्बंध सभ्यता के आरम्भ से रहा है। मानव सभ्यताएँ और संस्कृतियाँ प्रकृति के संरक्षण में ही पुष्पित, पल्लवित और विकसित हुई है। प्रकृति ने मनुष्य का पोषण एवं संवर्धन किया और बदले में मानव ने प्रकृति का संरक्षण एवं सम्मान किया। मानव एवं पर्यावरण का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।[1] पर्यावरण शब्द का निर्माण परिआवरण दो शब्दों से मिलकर हुआ हैं जिसका अर्थ ''चारों तरफ से घेरा'' अर्थात हमारे चारों तरफ जो वातावरण हैं जिसका हम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उपभोग करते हैं, पर्यावरण कहलाता है। पर्यावरण के अन्तर्गत प्रकृतिक सभी तत्व आकाश, जल अग्नि, ऋतुएं, पर्वत, नदियाँ, तड़ाग, वृक्ष, वनस्पति, जीव–जन्तु, ग्रह, नक्षत्र, दिशाएं एक तरह से अखिल बाह्मण्ड ही समाहित हो जाता है। वातावरण के यह सभी तत्व मानव जीवन को प्रभावित करने के साथ ही स्वयं भी मानवीय कृत्यों से प्रभावित होते है। आदिकाल से ही प्रकृति एवं मनुष्य एक दूसरे के पूरक है। मानव जीवन का कोई भी पक्ष पर्यावरण से पृथक करके नहीं देखा जा सकता है। नित्य–क्रिया, संस्कार, व्रत अनुष्ठान, त्योहार, क्रिया–क्रम, पूजा पद्धति, नृत्य–गीत सभी में पर्यावरण समाहित है। भारतीय लोकजीवन में न केवल पृथ्वी, जल, वायु, अन्तरिक्ष अग्नि, सोम, सूर्य इत्यादि पूजनीय है अपितु परम्परागत् नदी, पहाड़, जलाशय, पशु–पक्षी, जीव–जन्तु, वृक्ष–वनस्पतियाँ सभी की पूजा का वर्णन हमारे प्राचीन भारतीय धर्मग्रंथों में मिलता है। भारत में प्राचीन काल से ही धर्मग्रंथों में पर्यावरणीय चेतना पर विशेष ध्यान दिया गया है। नवपाषण काल से ही वृक्ष पूजा, जल पूजा, नदी पूजा, मातृदेव पूजा आदि के प्रमाण मिलने लगते है। भारतीय परम्परा में प्रकृति एवं मानव जीवन को परस्पर समन्वित करके एकीकृत अस्तित्व की परिकल्पना की गयी है। प्रस्तुत शोधपत्र में इसी उद्देश्य की पूर्ति से सम्बन्धित तथ्यों का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

धर्मग्रंथों में पर्यावरण चेतना
मानव सभ्यता के प्रारम्भ से ही मानव एवं प्रकृति का अटूट सम्बंध रहा है। मानव जन्म से ही प्राकृतिक तत्वों पर निर्भर रहा हैं जिसके कारण ही मानव ने प्राकृतिक तत्वों की सुरक्षा एवं सरंक्षण का दायित्व पहले ही समझ लिया था। भारतीय भूमि की बनावट प्राकृतिक होने के कारण जहां वन, उपवन तथा वनस्पति सम्पदा का अपार भंडार है। ये सभी तत्व भारत की प्राकृतिक सपन्नता का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत करते है। सभ्यता के प्रारम्भिक काल से पशु–पक्षियों, पेड़–पौधों, जंगली घास–फूस, फल–फूल एवं कंदमूल आदि का भी महत्व किसी न किसी रूप में रहा हैं। वेदों, पुराणों, स्मृतियों, महाकाव्यों आदि प्राचीन भारतीय धर्मग्रंथों में प्रकृति, जीव–जन्तु, पर्वत, नदी, पहाड़ आदि पक्षों के माध्यम से प्रकृति के संरक्षण को महत्व दिया गया है। इसलिए देवमण्डल में देवता की आराधना के साथ–साथ वनस्पति, जन्तु एवं उनके वाहन इत्यादि को भी देवतुल्य माना गया है। हाथी, गाय, पीपल नीम, अशोक, तुलसी आदि के प्रति भक्ति–भाव का मूल कारण पर्यावरण संतुलन में इनके योगदान से जुड़ा है।

ऋग्वेद
प्राचीन भारतीय धर्म ग्रन्थों में ऋग्वेद को आदिकालीन प्राचीनतम् धर्म ग्रंथ माना जाता है जो सर्वथा सत्य है। ऋग्वेद के 'औषधिसूक्त[2]' में वृक्षों और वनस्पतियों के औषधीय गुणों के बारे में कहा गया है और उन्हें माता की उपमा से विभूषित किया गया है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में माता को पूज्यनीय कहा गया है। अतः इस

प्रकार यह कहा जा सकता है कि ये औषधियुक्त वनस्पतियाँ भी पूज्यनीय है। औषधियाँ विभिन्न रोगों और प्रदूषण को दूर करती है।[3] ऋग्वेद में पृथ्वी एवं आकाश के बारे में क्रमशः कहा गया है कि पृथ्वी मेरा भरण–पोषण करती है अतः वह मेरी माता है और आकाश मेरी रक्षा करता है अतः वह पिता तुल्य है।[4] इससे स्पष्ट होता है कि हमारे ऋषियों मनीषियों ने पर्यावरण संरक्षण के लिए पृथ्वी को माता एवं आकाश को पिता तुल्य मानकर उनकी महत्ता को स्थापित करने का प्रयास किया है। ऋग्वेद में वृक्षों को संरक्षित करने का निर्देश देते हुए कहा गया है कि वृक्षों को न काटो, क्योंकि ये प्रदूषण को नष्ट करते है।[5] पेड़–पौधे एवं वनस्पतियाँ हमारे रक्षा कवच के समान है। अतः न ही हमें इनकी उपेक्षा करनी चाहिए और न ही इन्हें हमारा साथ छोड़ना चाहिए।[6] इससे यह स्पष्ट होता है कि मानव, जीव–जन्तु एवं वनस्पतियों का पारस्परिक सह सम्बंध है और दोनों एक दूसरे के पूरक है।

यजुर्ववेद

यजुर्वेद में पर्यावरण की सुरक्षा एवं संवर्धन के लिए मानव के द्वारा किये जाने वाले कार्य को अनुशासित करने के लिए कहा गया है कि ''जो कुछ भी प्रकृति के कण–कण में है, उसमें ईश्वर का वास होता है। अतः इससे स्पष्ट होता है कि प्रकृति की सुरक्षा के लिए त्याग पूर्वक भोग करना, लोभ न करना जिससे पर्यावरण को हानि न पहुचे। यजुर्वेद में कहा गया है कि विधिपूर्वक कृषिरूपी यज्ञादि द्वारा उत्पन्न धान, जौ, तिल, उड़द, धान के चावल, अन्य छोटे दाने वाले अनाज, गेहूँ, मसूर और चना आदि अन्न संरक्षित एवं सम्पन्न किये जाने चाहिए।[7] इसी प्रकार माँ रूपी पृथ्वी पर उत्पन्न वृक्ष एवं वनस्पतियों के लिए कहा गया है कि हरे–भरे वृक्षों को नमस्कार है, वृक्षपालकों को नमस्कार है, औषधियों के पालकों को नमस्कार है।[8] इस प्रकार पेड़–पौधों, वनस्पतियों एवं औषधियों को सम्मानित कर उन्हें पर्यावरण की सुरक्षा हेतु संरक्षित करने का स्पष्ट निर्देश यजुर्वेद में प्राप्त होता है। पर्यावरणीय घटक वायु एवं जल के बारे में कहा गया है कि शुद्ध वायु जब सूर्य द्वारा उत्पन्न गर्मी से भाप बनकर उपर जाते हुए पानी के बूँद के कणों को बादलों तक ले जायेंगे तो बादल संसृप्त होकर भारी वर्षा करेंगे जिससे पृथ्वी वासी समस्त जीव–जन्तु, पेड़–पौधे एवं वनस्पतियाँ पुष्पित, पल्लवित होकर वृद्धि एवं विकास करेंगे तथा वातावरण एवं पर्यावरण सुखमय रहेगा। और पर्यावरणीय घटक जल के बारे में कहा गया है कि दिव्य गुण से युक्त जल हमारे लिए कल्याणकारी हो, उनको ग्रहण करने से हमें परम आनन्द एवं शांति के अनुभूति हो तथा उनके स्नान से रोग मुक्त हों।[9]

अथर्ववेद

अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में पृथ्वी को वृक्ष वनस्पतियों के माता के रूप में स्वीकार किया गया है तथा पर्यजन्य को इनका पिता कहा गया है।[10] अर्थात् पृथ्वी रूपी माता से विभिन्न प्रकार के पेड़–पौधें, वृक्ष–वनस्पतियों, तथा औषधियाँ उत्पन्न होती है और माता के रूप में पृथ्वी उनका भरण–पोषण, संवर्धन एवं संरक्षण करती है। जिसका पालन पिता तुल्य मेघ द्वारा वर्षा इत्यादि करके के किया जाता है। अथर्ववेद में अन्तरिक्ष की महत्व का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार समस्त प्राणियों का जीवन हृदय के धड़कन पर निर्भर रहता है उसी प्रकार अन्तरिक्ष भी हमारे बह्माण्ड के धड़रन के समान है।[11] जिसके सुरक्षित रहने पर हमारी पृथ्वी एवं पर्यावरण भी सुरक्षित रहेगा।

ब्राह्मणग्रंथ

प्राचीन भारतीय धर्मग्रंथों में वेदों के पश्चात् ब्राह्मण ग्रंथों का महत्वपूर्ण स्थान है। ब्राह्मण ग्रंथों में भी पर्यावरण की संवर्धन एवं संरक्षण हेतु विशेष निर्देश दिये गये है। ब्राह्मण ग्रंथों में वायु को विशेष महत्व देते हुए कहा गया है कि यह यज्ञ का प्राण है तथा इसके द्वारा अन्तरिक्ष की बाधाओं और यज्ञ में दी गयी आहुतियों से चारों ओर पृथ्वी से आकाश तक फैलाने वाला कहा गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि वायु ही यज्ञ वाहक है, वह देवताओं के लिए हवि का वहन करती है। वायु ही यज्ञ का प्राण है, जब अग्निहोत्र होता है तभी वह आह्लादित होती है।[12] पर्यावरणीय घटक अग्नि के महत्व को बताते हुए ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि देवतागण मुखरूपी अग्नि के द्वारा असुरों को दूर भगाते है।[13] यहाँ असुर का तात्पर्य वातावरण में विद्यमान प्रदूषण से लगाया जा सकता है क्योंकि यज्ञ के हवन सामग्री के जलने पर उत्पन्न सुगन्धित धुएँ द्वारा वायु में विद्यमान दुर्गन्ध रूपी राक्षस नष्ट हो जाते है।[14] शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ के महत्व को बताते हुए कहा गया है कि यज्ञ के द्वारा वातावरण की शुद्धि होती है जिससे मानव एवं समस्त जीव–जन्तुओं के लिए शुद्ध वायु एवं उनके द्वारा छोड़े गये कार्बनडाई आक्साइड द्वारा पेड़–पौधों को भोजन की प्राप्ति हो।

उपनिषद

उपनषिद भारतीय चिन्तन का शिखर ग्रंथ है। उपनिषद वह विद्या है जो समस्त अनर्थो को उत्पन्न करने वाले सांसारिक क्रिया–कलापों का नाश करती है, जिससे संसार की कारणभूत अविद्या के बन्धन शिथिल पड़ जाते है और उसके द्वारा बह्मज्ञान की प्राप्ति होती है।[15] इस प्रकार उपनिषद कालीन ऋषि, मुनि एवं मनीषियों द्वारा विद्यार्थियों को अपने समीप बैठाकर प्रकृति के गूढ़ रहस्यों के बारे में शिक्षा दी जाती थी तथा ऐसे विषयों पर विशेष शिक्षा दी जाती थी कि किस प्रकार प्रकृति एवं पर्यावरण सुरक्षित रहे। तैत्तिरीय उपनिषद[16] में सृष्टि प्रक्रिया में उल्लेख आया है कि परमात्मा से आकाश उत्पन्न हुआ है, आकाश से वायु उत्पन्न हुई, वायु से अग्नि उत्पन्न हुई, अग्नि से जल उत्पन्न हुआ, जल से पृथिवी, पृथिवी से औषधियाँ, औषधियों से अन्न उत्पन्न हुआ, और अन्न से पुरूष उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार पंचमहाभूतों की अवस्थिति परमात्मा और पुरूष के मध्य महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में है एवं इससे स्पष्ट होता है कि है कि सृष्टि का निर्माण पंचतत्वों के सामूहिक संतुलन का परिणाम है और इसी से पर्यावरण का निर्माण होता है तथा इसके असन्तुलित होते ही प्राकृतिक विनाश की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। वृहदारण्यक उपनिषद में कहा गया है कि पृथ्वी के अन्दर अग्नि है जिसके कारण पृथ्वी को अग्निगर्भा कहा गया है।[17] इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय धर्मग्रंथों में वैदिक कालीन ग्रंथों में उल्लिखित समस्त मंत्रों में पर्यावरण की सुरक्षा का निर्देश प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से दिया गया है क्योंकि इन धार्मिक ग्रंथों में जो निर्देश दिया गया है उससे स्पष्ट होता है कि प्रकृति एवं पर्यावरण की सुरक्षा एवं संरक्षण ही इनका धर्म था। वर्तमान समय में भी जिसे धारण करना मानव का परम कर्तव्य है।

स्मृतियाँ

प्राचीन भारतीय ग्रंथों के अन्तर्गत स्मृतियों में भी पर्यावरण संरक्षण पर ध्यान एवं निर्देश देते हुए कहा गया है कि यदि कोई व्यक्ति नियम विरूद्ध कार्य करता है तो उसे कठोरतम दण्ड दिया जाना चाहिए। मनुस्मृति में कहा गया है कि जो व्यक्ति हरे पेड़–पौधों की कटाई करे उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया जाय।[18] याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है कि किसी व्यक्ति द्वारा किसी वृक्ष की लताओं, उनकी शाखाओं को काटा जाता है तो वह दण्ड का भागीदार होगा।[19] मनुस्मृति में कहा गया है कि जो पशुओं को मारने की अनुमति प्रदान करता है, वह जो उन्हें मारता है, वह जो

उनका क्रय–विक्रय करता है, वह जो उन्हें पकाता है, वह जो उन्हें खाता है, सभी को हत्यारा माना जाना चाहिए तथा उन सभी को प्राकृतिक नियमों के अनुसार दण्डित किया जाना चाहिए।[20] मनुस्मृति में निर्देश दिया गया है कि गांव की सीमा पर तालाब या कुआँ, बावड़ी, झरना में से कुछ न कुछ अवश्य बनवाने चाहिए और साथ ही वट, पीपल, नीम, सेमल, साल, ताल एवं दूध वाले वृक्ष भी लगाने चाहिए।[21] अतः इस निर्देश का उद्देश्य यह है कि गाँव के आस–पास का वातावरण इन वृक्षों एवं पानी के साधनों से सुखमय एवं शान्तिमय बना रहे। अतः इस प्रकार हमारे स्मृतिकारों द्वारा दण्ड विधान की व्यवस्था करके तत्कालीन समाज में ऐसी व्यवस्था स्थापित की गयी जिससे की समाज का कोई भी वर्ग ऐसे किसी भी कार्य को अंजाम न दे जिससे प्रकृति एवं पर्यावरण को किसी प्रकार की क्षति पहुंचे।

रामायण

महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण हिन्दूधर्म का प्राचीन महाकाव्य है। रामायण में रामराज्य के आदर्शो के साथ–साथ समाज में उत्तमकोटि के धार्मिक जीवन की झलक भी दिखाई पड़ती है जिसमें प्रकृति एवं पर्यावरण के समस्त तत्वों का समावेश है। रामायण में वर्णित वन, वनस्पतियाँ, नदी, तालाब, झील, झरने, पहाड़, जंगल, पशु–पक्षी आदि का एक आदर्शात्मक एवं अनूठा सौन्दर्य प्राप्त होता है। जो स्वच्छ, शुद्ध, एवं सुखमय वातावरण का उदाहरण प्रस्तुत करता है। रामायण में वायु के बारे में कहा गया है कि वायु प्राण है, वायु परम सुख है, तथा वायु सम्पूर्ण जगत् का मूल भी है।[22] रामायण में कहा गया है कि हेमन्त ऋतु में कोहरे से ढके हुए दिन में प्रातः सूर्योदय होने पर यव के उगे हुए पौधे सूर्य की किरणों से खूब सुशोभित होते है।[23] इससे स्पष्ट होता है कि यव में अनेक औषधिय गुण पाये जाते है तथा इसका यज्ञ में आहूति भी दी जाती है। जिससे पर्यावरण के संरक्षण में महत्वपूर्ण है। रामचरितमानस के आयोध्या कांड में कहा गया है कि वन यात्रा के दौरान राम जहां भी जाते, प्राकृतिक पेड़–पौधे, वनस्पतियाँ, लताएं हर्षोल्लास से उनका स्वागत करती थी। इस प्रकार सम्पूर्ण रामायण की विषयवस्तु प्रकृति एवं पर्यावरण अर्थात् जीव–जन्तु, पशु–पक्षी, नदी–तालाब जंगल–झाड़ी, पेड़–पौधें, पर्वत, झील, वन–उपवन, फल–फूल आदि समस्त पर्यावरणीय तत्व विद्यमान था।

महाभारत

महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित महाकाव्य महाभारत में धार्मिक, प्राकृतिक एवं लोक कथाओं के माध्यम से प्रकृति एवं पर्यावरण के महत्व को इंगित किया गया है। महाभारत में वन, पेड़–पौधे, वनस्पतियाँ, नदी, पर्वत, तालाब, कूप, झील, पशु–पक्षी, तथा अन्य जंगली जीव–जन्तुओं का विशद् वर्णन किया गया है। महाभारत के अनुशासन पर्व में उल्लेख आया है कि बहेलिए ने जंगल में रात गुजारने के लिए हाथ जोड़ कर वहां के पेड़–पौधों एवं वनस्पतियों से अनुमति मांगी थी और कहा हे इस वृक्ष पर निवास करने वाले देव मैं आपकी शरण लेता हूँ।[24] इससे स्पष्ट होता है कि विशिष्ट जन के साथ–साथ सामान्य जन भी वृक्ष वनस्पतियों के देवत्व भाव को भली–भांति समझते थे और उनके सम्मान एवं संरक्षण का विशेष ध्यान देते थे। महाभारत के शान्तिपर्व में पशुओं एवं पक्षियों हिंसा की निंदा की गयी है और इन पशु पक्षियों को परिवार के सदस्यों की तरह माना जाता था।[25] वनपर्व में वनों के महत्व के बारे में कहा गया है कि वनों से जल संरक्षित होता है, फल, सुगन्धित पुष्प, और औषधियाँ प्राप्त होती है।[26] इससे स्पष्ट होता है कि पर्यावरण संरक्षण में वनों और वृक्षों का अत्यधिक महत्व है। अतः महाभारत ग्रंथ पर्यावरण चेतना से ओतप्रोत है।

श्रीमद्भगवत्गीता

श्रीमद्भगवत्गीता में यज्ञ विधान पर जोर देते हुए कहा गया है कि अन्न से सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, अन्न वर्षा से उत्पन्न होते है, वर्षा यज्ञों से होती है और यज्ञ कर्मो से उत्पन्न होते है।[27] अर्थात् धर्म और कर्म एक दूसरे के पूरक है। इसी प्रकार ईश्वर और प्रकृति के बारे में कहा गया है कि ईश्वर ही प्रकृति की उत्पत्ति, पालन और विनाश का मूल कारण है।[28] अर्थात् ईश्वर और प्रकृति अलग–अलग तत्व न होकर एक ही तत्व के दो रूप है। गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है कि मैं समस्त वृक्षों में पीपल हूँ अर्थात् पीपल के वृक्ष धार्मिक महत्व के साथ ही साथ पर्यावरण को संतुलित बनाये रखने पर जोर दिया गया है। इस प्रकार श्रीमद्भगवत्गीता में पर्यावरण संरक्षण के उपदेशात्मक विचारों का समावेश है जिसके माध्यम से यह निर्देश दिया गया है गया है कि पर्यावरण संरक्षण मानव का परम् कर्तव्य है।

निष्कर्ष

प्राचीन भारतीय धर्मग्रन्थों में प्राचीन काल से भारतीय ऋषिमुनियों एवं मनीषियों ने पर्यावरण के प्रति गहन संवेदनशीलता का संदेश सामान्य जन तक पहुंचाता रहा एवं प्रकृति एवं पर्यावरण को स्वच्छ रखने के लिए प्रकृति के पांच प्रमुख घटक को स्वच्छ रखना ही मानव धर्म का परम कर्तव्य बताया है। पीपल, वट वृक्ष, नीम, आवला, तुलसी, केला, धतूरा आदि वृक्षों एवं वनस्पतियों को प्रत्येक धर्म में किसी न किसी रूप में पूज्यनीय माना गया है। वैज्ञानिक दृष्टि से ये सभी पौधे कीटाणुनाशक एवं आक्सीजन के मुख्य उत्सर्जक माने गये है। अतः प्राचीन भारतीय धर्मग्रंथों को यदि पर्यावरण संरक्षण ग्रन्थ कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. प्रज्ञा, पर्यावरण विशेषांक, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी अंक–55, भाग–2 वर्ष 2009–10
2. ऋग्वेद, 10/97/1। भट्ट, मन्मोक्षमूलर, चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणसी–1966, भाग–41
3. ऋग्वेद, 10/17/6।
4. ऋग्वेद 1/170/2। माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः, उरूव्यचसा महिनी आसश्चता, पिता–माता च भुवनानि रक्षत।
5. ऋग्वेद, 6/48/17। भाग–2 मा काकम्बीरम् उद् वृहो वनस्पतिम्। अशस्तीर्वि हि नीनशः।
6. ऋग्वेद, 3/53/20। अयमस्यान् वनस्पतिर्मा च हा मा च रीरिषत्
7. यजुर्ववेद, 18/12। देव सुदर्शन, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली–1974 भाग–2
8. यजुर्वेद, 16/17, 19, 20। वही। नमो वृक्षेभयो हरिकेशेम्य वृक्षाणां पतये नमः औषधीनां पतये नमः।
9. यजुर्वेद, 36/12। शं नो देवी रभिष्टये आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभि स्मवलु नः।
10. अथर्ववेद, 1/2/1। अर्थवेद संहिता, शास्त्री माध्वाचार्य, माध्व पुस्तकालय दिल्ली, संवत् 2035
11. अथर्ववेद, 12/1/8। यस्या हृदयं परमेव्योमन्।
12. ऐतरेय ब्राह्मण, 2/34। सायण भाष्य सहित, मालवीय, सुधाकर, तारा प्रिटिंग वर्क्स, वाराणसी– 1987
13. ऐतरेय ब्राह्मण, 6/14।
14. शतपथ ब्राह्मण, 9/8/1। सायण भाष्य सहित, भारतीय विद्या प्रकाशन दिल्ली–1989। यज्ञो हि सर्वाणि भूतानि भूनाक्ति।
15. गैरोला, वाचस्पति, वैदिक साहित्य और संस्कृति, व्रजजीवन प्राप्य भारती ग्रंथमाला–14, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली–2004। पृ. 114।

16. नारायण आर्य, कमल, वैदिक वाङ्मय पर्यावरण एवं प्रदूषण, स्वामी दिव्यानन्द प्रकाशन, मध्यप्रदेश 1998। पृ. 21। तस्माहा एमस्मादात्मान..... स वा एष पुरूषोऽन्तरसमयः। (तैति. उप. 2/1/1)
17. वृद्धदारण्यक उपनिषद, 6/4/22। यथाऽग्निगर्भा पृथिवी, द्योरिन्द्रेण गर्भिणी।
18. मनुस्मृति, 11/65। कौण्डिन्यायन, शिवराज, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी 2007 भाग–2
19. याज्ञवल्क्य स्मृति, 21। 227–229। राय, गंगासागर चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली 2007।
20. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/224–226। वही।
21. मनुस्मृति, 8/246 भाग–2 सीमावृक्षांश्च कुर्वीत.....क्षीणीऽचैव पादपान्
22. वाल्मीकि रामायणम् 7/32/62। वायु प्राणः ....विन्दते जगत।।
23. वाल्मीकि रामायणम्, 3/15/16।
24. महाभारत, अनुशासन पर्व, 143/32। शास्त्री, रामनारायण दत्त, पाण्डेय 'राम', गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् 2051
25. प्रकाश, ओम, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली 2001। पृ. 28–29।
26. अग्निहोत्री, प्रभुदयाल, संस्कृत साहित्य एवं पर्यावरण, ईर्स्टन बुक लिंकर्स, दिल्ली–2011। पृ. 413, 414।
27. श्रीमद्भागवत्गीता, 3/14। सातवलेकर, दामोदर, भारत मुद्रणालय स्वाध्याय मण्डल, सूरत–1961
28. श्रीमद्भागवतगीता, 9/8। यादव, विजयनारायण, कला प्रकाशन, बी.एच.यू. वाराणसी 2003। प्रकृतिं स्वामवृष्टम्य, विस्तजामि पुनः पुनः।